व्याप्त है, अपने स्वाभाविक कर्म से उसे पूजकर मनुष्य संसिद्धि को प्राप्त होता है।।४६।।

तात्पर्य

जैसा पन्द्रहवें अध्याय में कहा है, सारे जीव श्रीभगवान् के भिन्न-अंश हैं। इस दृष्टि से भगवान् ही सब जीवों के आदि हैं। इसकी पुष्टी में वेदान्तसूत्र कहते हैं, **जन्माद्यस्य यतः** श्रीभगवान् सम्पूर्ण प्राणी-जीवन के उद्‌गम हैं। इतना ही नहीं, अपनी अंतरंगा और बहिरंगा शक्तियों के द्वारा वे सर्वव्यापक भी हैं। इसलिए शक्तियों के सहित उनकी आराधना करनी चाहिए। वैष्णवजन सामान्यतः अंतरंगा शक्ति के साथ परमेश्वर श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं। उनकी बहिरंगा शक्ति अंतरंगा शक्ति की ही विकृत छाया है। यह बहिरंगा शक्ति पृष्टभूमि है और श्रीभगवान् स्वयं अपने अंश परमात्मा के रूप में सर्वव्यापक हैं। वे सारे देवताओं, मनुष्यों, पशुओं, आदि के अन्तर्यामी हैं। अतः प्राणीमात्र को समझना चाहिए कि परमेश्वर के भिन्न-अंश के रूप उनकी आराधना करना उसका कर्तव्य है। इस भाव के साथ सभी पूर्णरूप से कृष्णभावनाभावित होकर भगवद्‌भक्तियोग के परायण हों, यह इस श्लोक का निर्देश है।

प्राणीमात्र को समझना चाहिए कि वह अपने कर्तव्य-कर्म में इन्द्रियों के स्वामी भगवान् हृषीकेश द्वारा नियुक्त किया गया है; इसलिए उसका धर्म है कि अपने द्वारा संपादित कर्म के फल से उनकी अर्चना करे। जो पूर्ण कृष्णभावना में नित्य-निरन्तर यही चिन्तन करता है, वह भगवत्कृपा से पूर्ण तत्त्वज्ञ हो जाता है। इसी में जीवन की सफलता है। श्रीभगवान् ने गीता में वचन दिया है, **तेषामहं समुद्धर्ता**। ऐसे भक्त के उद्धार का दायित्व स्वयं श्रीभगवान् के हाथों में चला जाता है। बस यही जीवन की परम कृतार्थता है। मनुष्य किसी भी व्यवसाय में क्यों न हो, यदि अपने कर्मों के फल से श्रीभगवान् की सेवा करता है, तो अवश्य परम संसिद्धि को प्राप्त हो जायगा।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।४७।।

श्रेयान्=श्रेष्ठ है; **स्वधर्मः**=अपना कर्तव्य-कर्म; **विगुणः**=भलीभाँति न किया गया भी; **परधर्मात्**=दूसरे के कर्तव्य से; **स्वनुष्ठितात्**=अच्छी प्रकार से किया; **स्वभावनियतम्**=स्वभाव के अनुसार विहित; **कर्म**=कर्म; **कुर्वन्**=करने से; **न आप्नोति**=प्राप्त नहीं होता; **किल्बिषम्**=पाप को।

अनुवाद

दूसरे के कर्तव्य-कर्म को भलीभाँति करने से अच्छी प्रकार न किया गया भी अपने कर्तव्य कर्म का आचरण श्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभाव से नियत कर्म को करने से पाप को प्राप्त नहीं होता।।४७।।

तात्पर्य

भगवद्‌गीता में सभी मनुष्यों के कर्तव्य-कर्मों का विधान है। जैसा पूर्व